PAPER NAME

???? ???? .pdf

WORD COUNT

3757 Words

CHARACTER COUNT

10842 Characters

PAGE COUNT

17 Pages

FILE SIZE

1.2MB

SUBMISSION DATE

Mar 16, 2026 7:21 AM GMT+5:30

REPORT DATE

Mar 16, 2026 7:21 AM GMT+5:30

0% Overall Similarity

This submission did not match any of the content we compared it against.

- 0% Internet database
- 0% Publications database
- Crossref database
- Crossref Posted Content database
- 0% Submitted Works database

Excluded from Similarity Report

- Bibliographic material
- Quoted material
- Cited material
- Small Matches (Less then 14 words)

शोध पत्र

एक ऐतिहासिक महिला व्यक्तित्व का मूल्यांकन: बेगम समरू के परिप्रेक्ष्य में

निशा

शोधार्थी, भाषा विभाग, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तरप्रदेश

ईमेल- nishabudh7@gmail.com

डॉ. सीमा शर्मा,

शोध-निर्देशक, अध्यक्ष- भाषा विभाग,स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तरप्रदेश

ईमेल- sseema561@gmail.com

सारांश

अठारहवीं सदी का उत्तरार्ध भारतीय इतिहास में विघटन, संघर्ष और सत्ता के नए रूपों का समय था। इस युग में जब मुग़ल साम्राज्य बिखर रहा था और अंग्रेज़ ईस्ट इंडिया कंपनी अपने प्रभाव का विस्तार कर रही थी, तब उत्तर भारत की राजनीतिक और सैन्य परिदृश्य में एक महिला शासिका 'बेगम समरू' का उदय हुआ। एक निर्धन और असुरक्षित जीवन से आरंभ कर सरधना की जागीर की सर्वेसर्वा बनने तक की उनकी यात्रा असाधारण है। इस शोधपत्र में उनके व्यक्तित्व के प्रखर पक्ष का अध्ययन किया गया है, जिसमें सत्ता का संचालन, सैन्य नेतृत्व, कूटनीति, धार्मिक सहिष्णुता और सांस्कृतिक संरक्षण शामिल हैं। लेख मुख्य रूप से राजगोपाल सिंह वर्मा की पुस्तक *बेगम समरू का सच* पर आधारित है, साथ ही अन्य इतिहासकारों ब्रजेंद्रनाथ बनर्जी और महेंद्रनाथ शर्मा की कृतियों से भी पूरक सामग्री ली गई है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि बेगम समरू केवल एक क्षेत्रीय शासिका नहीं थीं, बल्कि भारतीय इतिहास में महिला नेतृत्व की संभावनाओं का जीवंत प्रतीक थीं।

बीज शब्द- *बेगम समरू, सरधना, महिला नेतृत्व, सैन्य कौशल, कूटनीति, धार्मिक सहिष्णुता, सांस्कृतिक संरक्षण, अठारहवीं सदी, राजगोपाल सिंह वर्मा*

प्रस्तावना और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

अठारहवीं सदी का उत्तरार्ध भारतीय इतिहास में एक अत्यंत जटिल और संक्रमणकालीन समय था। औरंगज़ेब की मृत्यु (1707) के बाद मुग़ल साम्राज्य तेजी से विघटन की ओर बढ़ रहा था। दिल्ली का बादशाह केवल नाममात्र का शासक रह गया था, जबकि वास्तविक सत्ता क्षेत्रीय सरदारों, मराठों, सिखों, जाटों और अंततः अंग्रेज़ ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों में केंद्रित होने लगी। इस अस्थिर परिदृश्य ने सत्ता के नए केंद्र गढ़े, जहाँ कभी छोटे जमींदार या सैनिक साहसी कूटनीति और युद्ध के बल पर उल्लेखनीय स्थान प्राप्त कर लेते थे।

इसी समय भारत के सामाजिक परिदृश्य में महिलाओं की स्थिति गहरे पर्दानशीनी, रूढ़ियों और सीमाओं से बंधी हुई थी। महिलाओं को सत्ता और युद्ध से जुड़े निर्णयों में स्थान नहीं दिया जाता था। किंतु इतिहास ने समय-समय पर यह भी दिखाया कि जब अवसर मिले तो महिलाएँ किसी भी पुरुष शासक से कम नहीं रहीं। रज़िया सुल्तान और नूरजहाँ जैसी हस्तियों के बाद अठारहवीं सदी में सरधना की शासिका "बेगम समरू" इस परंपरा को आगे बढ़ाती हैं।

फरजाना से बेगम समरू तक

राजगोपाल सिंह वर्मा अपनी कृति *बेगम समरू का सच* में लिखते हैं कि बेगम समरू का प्रारंभिक जीवन दरअसल स्त्री की असुरक्षा और उपेक्षा का प्रतीक था। उनका जन्म 1751 में मेरठ ज़िले के कोताना गाँव में हुआ। पिता पठान मूल के थे और माता कश्मीरी ब्राह्मण वंश से आई बताई जाती थीं। पिता की मृत्यु के बाद सौतेले भाइयों ने माँ-बेटी को घर से निकाल दिया, जिससे वे दर-दर की ठोकरें खाने को विवश हो गईं। दिल्ली आकर वे गुलबदन नामक एक तवायफ़ के संरक्षण में पहुँचीं। यहीं फरजाना ने नृत्य और गायन सीखा। वर्मा जी के अनुसार, यदि नियति ने करवट न बदली होती तो शायद फरजाना एक सामान्य तवायफ़ बनकर रह जातीं, और उनका नाम इतिहास में दर्ज न होता।[1]

लगभग सोलह वर्ष की आयु में फरजाना की भेंट फ़्रांसीसी सेनापति वाल्टर रेनहार्ट सोम्ब्रे से हुई। दिल्ली और उसके आस-पास सक्रिय यह साहसी सेनापति "समरू" के नाम से प्रसिद्ध था। समरू ने फरजाना से विवाह किया और उसे अपनी जागीर की उत्तराधिकारी बनाया।

[1] राजगोपाल सिंह वर्मा, *बेगम समरू का सच* (मेरठ: संवाद प्रकाशन, 2019), 18.

वर्मा जी के अनुसार, यहीं से फरजाना के जीवन ने एक निर्णायक मोड़ लिया। वह केवल सैनिक साहसी की पत्नी ही नहीं रहीं, बल्कि धीरे-धीरे सैनिक अनुशासन, कूटनीति और सत्ता के व्यावहारिक पक्षों में भी पारंगत हो गईं।[2]

जागीर और सत्ता का उत्तराधिकार

1778 में जब समरू की मृत्यु हुई, तब फरजाना की आयु लगभग तीस वर्ष थी। सामान्यतः विधवा स्त्रियों को तत्काल परदे के पीछे कर दिया जाता, किंतु फरजाना ने असाधारण साहस दिखाया। उन्होंने सरधना की जागीर का प्रभार संभाला और मुग़ल सम्राट शाह आलम द्वितीय से इसकी औपचारिक पुष्टि प्राप्त की। वर्मा लिखते हैं कि यह स्वीकार्यता केवल औपचारिकता नहीं थी; दिल्ली दरबार पहले से ही जानता था कि फरजाना राजनीति और सैन्य दोनों में सक्षम हैं।[3]

ब्रजेंद्रनाथ बनर्जी अपनी पुस्तक *Begum Samru* (1925) में लिखते हैं कि दिल्ली दरबार ने एक महिला को इतनी महत्वपूर्ण जागीर सौंपना इस बात का प्रमाण था कि उसकी क्षमता को दरबार और सरदार दोनों मान्यता देते थे। बनर्जी के अनुसार, “यह नियुक्ति किसी चमत्कार से कम नहीं थी, क्योंकि उस समय स्त्रियों का दरबार में केवल मनोरंजन की वस्तु के रूप में इस्तेमाल किया जाता था।”[4]

धर्म परिवर्तन और पहचान

1781 में फरजाना ने आगरा के रोमन कैथोलिक चर्च में ईसाई धर्म स्वीकार कर “जोहाना नोबिलिस” नाम धारण किया। इस घटना पर वर्मा जी ने विस्तार से लिखा है। उनके अनुसार, धर्म परिवर्तन का निर्णय आस्था और कूटनीति दोनों से प्रेरित था। फरजाना समझती थीं कि यूरोपीय सैनिक और अधिकारी तभी तक निष्ठावान रह सकते हैं जब तक

---

[2] वही, 27.

[3] वही, 45.

[4] Brajendranath Banerji, *Begum Samru* (Calcutta: University of Calcutta, 1925), 51.

उनके साथ सांस्कृतिक व धार्मिक निकटता बनी रहे। यही कारण था कि उन्होंने धर्म परिवर्तन को केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि राजनीतिक अस्त्र के रूप में भी अपनाया।[5]

महेंद्रनाथ शर्मा ने इसे व्यावहारिक दृष्टिकोण बताया है। उनके अनुसार, "यदि फरजाना धर्म परिवर्तन न करतीं, तो यूरोपीय अधिकारियों और सैनिकों की निष्ठा बनाए रखना कठिन होता। उन्होंने दूरदर्शिता दिखाकर यह कदम उठाया और इस प्रकार अपनी सत्ता को स्थिर बनाया।"[6]

महिला नेतृत्व की परंपरा और बेगम समरू

वर्मा लिखते हैं कि बेगम समरू का उदय केवल व्यक्तिगत साहस की गाथा नहीं था, बल्कि यह उस परंपरा का हिस्सा था जिसमें भारतीय समाज ने समय-समय पर महिलाओं को निर्णायक भूमिकाओं में स्वीकार किया। रज़िया सुल्तान (13वीं सदी) ने दिल्ली की गद्दी संभाली थी और नूरजहाँ (17वीं सदी) ने दरबार की नीतियों को नियंत्रित किया था। किंतु बेगम समरू का महत्व इस बात से और बढ़ जाता है कि उन्होंने केवल संकट काल में अस्थायी नेतृत्व नहीं किया, बल्कि पाँच दशकों से अधिक समय तक स्थिर शासन दिया।[7]

ऐतिहासिक मूल्यांकन

वर्मा जी के अनुसार, "बेगम समरू का सच यह है कि उन्होंने अपने अस्तित्व की लड़ाई को सत्ता और नेतृत्व में बदला। वह उस समाज के लिए प्रखर उदाहरण थीं, जहाँ महिलाएँ पर्दे और परंपराओं की कैद में थीं। उनकी कहानी यह दिखाती है कि परिस्थितियाँ चाहे कितन भी विपरीत क्यों न हों, यदि इच्छाशक्ति और व्यावहारिकता हो तो स्त्री भी सत्ता और

---

[5] वर्मा, *बेगम समरू का सच*, 62.

[6] Mahendranath Sharma, *The Life and Times of Begum Samru of Sardhana* (Delhi: S. Chand, 1972), 119.

[7] वर्मा, *बेगम समरू का सच*, 78.

कूटनीति की धुरी बन सकती है।"[8] इस दृष्टि से आधुनिक इतिहासलेखन ने भी बेगम समरू को विशुद्ध किंवदंती के रूप में नहीं, बल्कि ठोस ऐतिहासिक शक्ति के रूप में स्वीकार करना शुरू किया है।

प्रस्तावना और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से यह स्पष्ट होता है कि बेगम समरू का उदय संयोग या रोमांचक घटनाओं का परिणाम नहीं था, बल्कि यह उनकी व्यक्तिगत दृढ़ता, व्यावहारिक बुद्धिमत्ता और परिस्थितिजन्य कूटनीति का फल था। एक नर्तकी से जागीर की शासिका और कूटनीति की धुरी बनने तक की उनकी यात्रा भारतीय स्त्री नेतृत्व के इतिहास में अद्वितीय है। उन्होंने यह साबित किया कि सत्ता, सैन्य अनुशासन और कूटनीति जैसे क्षेत्रों में स्त्रीत्व बाधा नहीं, बल्कि एक विशिष्ट दृष्टि प्रदान कर सकता है।

खंड 2: सत्ता, नेतृत्व और सैन्य कौशल

बेगम समरू का व्यक्तित्व सबसे अधिक प्रखर जिस पक्ष से सामने आता है, वह है उनका सत्ता का संचालन और सैन्य नेतृत्व। अठारहवीं सदी का उत्तरार्ध केवल दिल्ली की गद्दी की कमजोरी का दौर नहीं था, बल्कि यह उन क्षेत्रीय ताक़तों का भी युग था, जो अपनी-अपनी शक्ति और संसाधनों के आधार पर उभर रही थीं। ऐसे दौर में किसी महिला का सत्ता पर काबिज़ होना और उसे पाँच दशकों तक स्थिर बनाए रखना असाधारण घटना थी।

जागीर की सत्ता का संचालन

1778 में रेन्हार्ट समरू की मृत्यु के बाद सरधना की जागीर फरजाना यानी बेगम समरू के हाथ आई। राजगोपाल सिंह वर्मा लिखते हैं कि यह केवल सत्ता का हस्तांतरण नहीं था, बल्कि उस समय के सामंती समाज में एक स्त्री के लिए राजनीतिक अस्तित्व की चुनौती भी थी। दिल्ली दरबार ने जागीर की पुष्टि तो कर दी, लेकिन यह मानकर कि एक महिला स्थिर

[8] वही, 112.

सत्ता नहीं चला पाएगी और अंततः मराठे या कोई अन्य शक्ति उस क्षेत्र पर अधिकार कर लेगी।[9]

किंतु बेगम समरू ने इस अनुमान को झुठला दिया। उन्होंने सरधना में एक ऐसा प्रशासनिक ढाँचा खड़ा किया, जहाँ राजस्व की वसूली नियमित हो, प्रजाजनों की सुरक्षा सुनिश्चित हो और सैन्य बल पूरी तरह अनुशासित रहे। वर्मा जी के अनुसार, “उनके शासन में सरधना एक छोटे-से गाँव से निकलकर उत्तर भारत का चर्चित सत्ता-केंद्र बन गया।”[10]

सैन्य संगठन और नेतृत्व

समरू की मृत्यु के बाद उनकी सेना का नेतृत्व अपने आप बेगम को संभालना पड़ा। सेना में यूरोपीय अफसर और भारतीय सैनिक दोनों शामिल थे। उस समय की सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि यूरोपीय अफसर अक्सर स्वेच्छाचारी और अवसरवादी होते थे। किंतु बेगम समरू ने अपने व्यक्तित्व और दृढ़ अनुशासन से उन्हें अपने अधीन रखा।

उनकी सेना में जॉर्ज थॉमस (आयरिश), ली-वासे (फ़्रांसीसी) और कई अन्य यूरोपीय अधिकारी काम करते थे। यह उनके नेतृत्व का ही परिणाम था कि ये अधिकारी, जो अन्य भारतीय दरबारों में प्रभुत्व जमाने का प्रयास करते थे, बेगम के अनुशासन में बने रहे।[11]

ब्रजेंद्रनाथ बनर्जी लिखते हैं कि जब बेगम हाथी पर सवार होकर तलवार लहराती हुई युद्धभूमि में उतरती थीं, तो उनकी छवि सैनिकों के लिए प्रेरणा और शत्रुओं के लिए भय का कारण बन जाती थी।[12]

गुलाम क़ादिर के विरुद्ध संघर्ष

---

[9] राजगोपाल सिंह वर्मा, *बेगम समरू का सच* (मेरठ: संवाद प्रकाशन, 2019), 85.

[10] वही, 92.

[11] वही, 104.

[12] Brajendranath Banerji, *Begum Samru* (Calcutta: University of Calcutta, 1925), 77.

1788 का वर्ष बेगम समरू के सैन्य कौशल की सबसे बड़ी परीक्षा था। उस समय रोहिल्ला सरदार गुलाम क़ादिर ने दिल्ली पर आक्रमण कर शाह आलम द्वितीय को अपमानित किया और उनकी आँखें फोड़ दीं। पूरा दरबार स्तब्ध था। ऐसी स्थिति में बेगम समरू ने अपनी सेना संगठित की और मराठा सेनापति महादजी शिंदे के साथ मिलकर गुलाम क़ादिर को परास्त किया।

राजगोपाल सिंह वर्मा लिखते हैं कि यह केवल एक सैन्य विजय नहीं थी, बल्कि इससे बेगम समरू का राजनीतिक स्थान भी बदल गया। अब वह दिल्ली दरबार की अनिवार्य सहयोगी बन चुकी थीं। शाह आलम द्वितीय ने उन्हें "ज़ेब-उन-निसा" की उपाधि दी, जो उनके साहस और बुद्धिमत्ता का राजकीय सम्मान था।[13]

प्रशासन और अनुशासन

बेगम समरू का सैन्य नेतृत्व केवल युद्ध जीतने तक सीमित नहीं था। उन्होंने अपनी सेना को इस प्रकार अनुशासित किया कि उसकी तुलना यूरोपीय सेनाओं से की जाने लगी। वर्मा लिखते हैं कि उनकी सेना में विद्रोह या अवज्ञा की कोई गुंजाइश नहीं थी; सज़ा कठोर और त्वरित होती थी। किंतु साथ ही सैनिकों को वेतन और सुविधाएँ भी समय पर मिलतीं। यह अनुशासन ही उनकी स्थिर सत्ता की गारंटी था। [14]

महेंद्रनाथ शर्मा भी मानते हैं कि "सरधना की सेना भारतीय रियासतों की सेनाओं में सबसे अनुशासित मानी जाती थी और इसका श्रेय बेगम के दृढ़ नेतृत्व को जाता है।"[15]

अंग्रेज़ों और मराठों के बीच संतुलन

अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध में अंग्रेज़ों और मराठों के बीच निर्णायक टकराव चल रहा था। बेगम समरू की जागीर इन दोनों शक्तियों के बीच स्थित थी। उन्होंने अद्‌भुत संतुलन नीति अपनाई। मराठों के साथ भी संबंध बनाए और अंग्रेज़ों से भी दूरी नहीं बढ़ाई। 1803 में

---

[13] वर्मा, *बेगम समरू का सच*, 118.

[14] वही, **123.**

[15] Mahendranath Sharma, *The Life and Times of Begum Samru of Sardhana* (Delhi: S. Chand, 1972), 134.

मराठों की पराजय के बाद उन्होंने अंग्रेज़ों से संधि कर ली और अपनी जागीर को सुरक्षित रखा। यह उनकी राजनीतिक दूरदर्शिता का प्रमाण था।

महिला के रूप में सैनिक नेतृत्व

सबसे उल्लेखनीय तथ्य यह है कि यह सब एक महिला द्वारा किया गया था। उस समय स्त्रियों को युद्धभूमि तो दूर, प्रशासन में भी स्थान नहीं दिया जाता था। किंतु बेगम समरू ने यह मिथक तोड़ा। उन्होंने साबित किया कि स्त्रियाँ केवल घरेलू भूमिकाओं तक सीमित नहीं, बल्कि तलवार और सत्ता की धुरी भी बन सकती हैं।

वर्मा लिखते हैं कि "बेगम समरू का सच यह है कि वह केवल जागीर की रक्षक नहीं थीं, बल्कि अपने समय की सबसे सक्षम सेनानायिका भी थीं। उनकी वीरता ने यह प्रमाणित किया कि स्त्रीत्व और शौर्य विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हो सकते हैं।"[16]

बेगम समरू का सत्ता संचालन और सैन्य कौशल इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि उन्होंने असंभव परिस्थितियों को अवसर में बदला। सरधना की जागीर, जो एक छोटे क्षेत्रीय सामंत की मिल्कियत थी, उनके नेतृत्व में राजनीतिक स्थिरता और सैन्य शक्ति का केंद्र बन गई। उन्होंने न केवल अपने अस्तित्व को बचाया, बल्कि पुरुष शासकों के बीच सम्मान और भय का स्थान भी प्राप्त किया।

उनका यह सैन्य और प्रशासनिक नेतृत्व भारतीय इतिहास में स्त्रियों की शक्ति का अनूठा उदाहरण है। वह केवल युद्ध की विजेता नहीं, बल्कि एक अनुशासित सेना की संगठनकर्ता और व्यावहारिक शासिका भी थीं।

कूटनीति, धर्म और सामाजिक-सांस्कृतिक उदारता

बेगम समरू का व्यक्तित्व केवल युद्धभूमि और सत्ता तक सीमित नहीं था। उनके भीतर एक प्रखर कूटनीतिज्ञ, धार्मिक दृष्टि से उदार शासिका और सांस्कृतिक संरक्षक भी था। यह वही

[16] वर्मा, बेगम समरू का सच, 156.

पक्ष है जिसने उनके शासन को केवल भय और अनुशासन से नहीं, बल्कि व्यापक स्वीकृति और सम्मान से भी स्थिर बनाए रखा।

कूटनीति और संबंधों की राजनीति

राजगोपाल सिंह वर्मा लिखते हैं कि बेगम समरू की सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि उन्होंने अपने छोटे-से सरधना राज्य को अठारहवीं सदी के महाशक्ति संघर्ष में सुरक्षित बनाए रखा। मराठों, अंग्रेज़ों, रोहिल्लों और दिल्ली दरबार के बीच संतुलन साधना किसी भी पुरुष शासक के लिए कठिन था। बेगम ने यह संतुलन अपनी कूटनीतिक सूझबूझ से साधा।[17]

1780 और 1790 के दशकों में जब उत्तर भारत का राजनीतिक परिदृश्य तेजी से बदल रहा था, बेगम ने न तो पूरी तरह मराठों पर भरोसा किया और न ही पूरी तरह अंग्रेज़ों के अधीन हुईं। उन्होंने शाह आलम द्वितीय के साथ निष्ठा बनाए रखी, किंतु व्यावहारिकता के आधार पर अंग्रेज़ों और मराठों से भी संबंध बनाए रखे। वर्मा जी के अनुसार, "यह उनकी कूटनीति ही थी कि सरधना कभी युद्ध का मैदान नहीं बनी, बल्कि हमेशा निर्णायक समझौते का स्थल बनी।"[18]

महेंद्रनाथ शर्मा भी लिखते हैं कि 1803 में जब मराठों और अंग्रेज़ों के बीच निर्णायक युद्ध हुआ और मराठे पराजित हुए, तो बेगम ने तुरंत अंग्रेज़ों से संधि की। इस कदम से उन्होंने अपनी जागीर को बचाए रखा और अंग्रेज़ों से विशेषाधिकार प्राप्त किए।[19]

धर्म परिवर्तन और धार्मिक उदारता

1781 में बेगम समरू ने कैथोलिक ईसाई धर्म स्वीकार किया और "जोहाना नोबिलिस" नाम पाया। इस घटना पर वर्मा जी ने विस्तार से लिखा है। उनके अनुसार, धर्म परिवर्तन उनके

---

[17] राजगोपाल सिंह वर्मा, *बेगम समरू का सच* (मेरठ: संवाद प्रकाशन, 2019), 163.

[18] वही, 175.

[19] Mahendranath Sharma, *The Life and Times of Begum Samru of Sardhana* (Delhi: S. Chand, 1972), 142.

जीवन का सबसे विवादास्पद किंतु सबसे रणनीतिक निर्णय था। उन्होंने यह कदम इसलिए उठाया क्योंकि वे समझती थीं कि यूरोपीय अधिकारियों और सैनिकों का विश्वास तभी तक स्थिर रहेगा जब तक धार्मिक निकटता बनी रहे। [20]

किंतु धर्म परिवर्तन का अर्थ यह नहीं था कि उन्होंने अपने प्रजाजनों पर कोई धार्मिक संकीर्णता थोपी हो। सरधना की उनकी रियासत में हिंदू, मुसलमान और ईसाई सभी समुदाय शांति से रहते थे। उन्होंने हिंदू मंदिरों को भी संरक्षण दिया और ईसाई चर्च भी बनवाए।

ब्रजेंद्रनाथ बनर्जी लिखते हैं कि सरधना का कैथोलिक चर्च, जिसे आज भी "समरू चर्च" कहा जाता है, उनकी धार्मिक उदारता और कला-प्रेम का स्मारक है। यह चर्च केवल पूजा का स्थान नहीं था, बल्कि उस युग की कला और स्थापत्य का उत्कृष्ट उदाहरण भी था।[21]

सामाजिक न्याय और सांस्कृतिक संरक्षण

बेगम समरू ने अपने शासन में केवल सैनिक और प्रशासनिक पक्ष ही नहीं देखा। उन्होंने सामाजिक न्याय और सांस्कृतिक संरक्षण को भी प्राथमिकता दी। वर्मा जी लिखते हैं कि उनकी रियासत में किसानों से मनमानी लगान नहीं वसूली जाती थी। राजस्व व्यवस्था अपेक्षाकृत उदार थी, जिससे सरधना के ग्रामीण जीवन में स्थिरता बनी रही।[22]

इसके अतिरिक्त उन्होंने संगीत, नृत्य और स्थापत्य को भी संरक्षण दिया। दिल्ली और आगरा के कलाकार अक्सर सरधना में शरण लेते थे, क्योंकि वहाँ उन्हें न केवल आर्थिक सहयोग मिलता था, बल्कि सम्मान भी मिलता था।

स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण

---

[20] वर्मा, *बेगम समरू का सच*, 182.

[21] Brajendranath Banerji, *Begum Samru* (Calcutta: University of Calcutta, 1925), 96.

[22] वर्मा, *बेगम समरू का सच*, 201.

बेगम समरू स्वयं एक स्त्री थीं, जिन्होंने असुरक्षा और अपमान का अनुभव किया था। इस कारण उनके शासन में स्त्रियों की स्थिति अपेक्षाकृत सुरक्षित और सम्मानजनक थी। वर्मा जी लिखते हैं कि उनकी रियासत में स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों पर कठोर दंड दिए जाते थे और विधवाओं को विशेष संरक्षण मिलता था।[23] यह पहलू उस युग में अत्यंत असाधारण था, क्योंकि अधिकांश सामंती राज्यों में स्त्रियाँ सबसे अधिक उपेक्षित थीं।

उदारता और यूरोपीय संपर्क

कूटनीति और धार्मिक उदारता के साथ-साथ बेगम समरू का एक और उल्लेखनीय पहलू था; उनकी यूरोपीय दुनिया से निकटता। उन्होंने मिशनरियों को संरक्षण दिया, ईसाई शिक्षा को बढ़ावा दिया और यूरोपीय अधिकारियों को अपने दरबार में स्थान दिया। किंतु इसका अर्थ यह नहीं था कि उन्होंने भारतीय परंपराओं को अस्वीकार किया हो।

उनका दरबार भारतीय और यूरोपीय परंपराओं का एक अनूठा संगम था। वहीं से यह संदेश जाता था कि सरधना की सत्ता केवल तलवार की नहीं, बल्कि सांस्कृतिक संवाद की भी धुरी है।

ऐतिहासिक मूल्यांकन

इतिहासकारों ने इस पक्ष पर अलग-अलग दृष्टिकोण दिए हैं। बनर्जी इसे उनके व्यावहारिक कूटनीति का परिणाम मानते हैं। उनके अनुसार, “यदि वह केवल धर्म परिवर्तन करके यूरोपीय प्रभाव में बंध जातीं, तो उनकी जागीर नष्ट हो जाती। किंतु उन्होंने भारतीयता और यूरोपीयता का संतुलन साधा।”[24]

वर्मा जी का आकलन और गहरा है। वह लिखते हैं कि “बेगम समरू का सच यह है कि उन्होंने धर्म और संस्कृति को राजनीतिक अस्त्र नहीं, बल्कि समाज की स्थिरता का आधार बनाया।

---

[23] वही**, 219.**

[24] Banerji, *Begum Samru*, 102.

उन्होंने यह प्रमाणित किया कि सत्ता केवल तलवार से नहीं, बल्कि सहिष्णुता और संवाद से भी चलती है।"[25]

बेगम समरू का कूटनीतिक कौशल, धार्मिक उदारता और सांस्कृतिक संरक्षण उनके व्यक्तित्व को बहुआयामी बनाते हैं। वह केवल युद्धभूमि की वीरांगना नहीं थीं, बल्कि एक ऐसी शासिका थीं जिन्होंने धार्मिक सहिष्णुता, सामाजिक न्याय और सांस्कृतिक संरक्षण को सत्ता का अभिन्न हिस्सा बनाया।

उनका यह पक्ष भारतीय इतिहास में स्त्री नेतृत्व की उदारता और व्यावहारिकता का अद्वितीय उदाहरण है।

निष्कर्ष और मूल्यांकन

बेगम समरू का जीवन भारतीय इतिहास का एक अनोखा अध्याय है। एक निर्धन और असुरक्षित लड़की फरजाना से लेकर सरधना की सर्वशक्तिशाली शासिका और दिल्ली दरबार की अनिवार्य सहयोगी बनने तक की उनकी यात्रा यह प्रमाणित करती है कि स्त्रियाँ न केवल पुरुष-प्रधान सत्ता संरचनाओं को चुनौती दे सकती हैं, बल्कि उन्हें अपनी शत पर आकार भी दे सकती हैं।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

अठारहवीं सदी का उत्तरार्ध भारतीय इतिहास का वह दौर था जब सत्ता का केंद्र बिखर चुका था। मुग़ल बादशाह केवल नाम मात्र के प्रतीक रह गए थे और क्षेत्रीय सरदार, मराठे, सिख और अंततः अंग्रेज़ नई शक्तियाँ बनकर उभर रहे थे। इस अस्थिर समय में छोटे-से सरधना राज्य का स्थिर रहना और उसका महत्व बढ़ना अपने आप में अद्‌भुत है। राजगोपाल सिंह वर्मा लिखते हैं कि "बेगम समरू का सच यह है कि उन्होंने केवल सत्ता संभाली नहीं, बल्कि

[25] वर्मा, *बेगम समरू का सच*, 225.

उसे सुदृढ़ किया और यह प्रमाणित किया कि एक स्त्री भी इस विघटनकारी काल में निर्णायक शक्ति बन सकती है।"[26]

सैन्य और प्रशासनिक मूल्यांकन

बेगम समरू का सबसे प्रखर पक्ष उनका सैन्य नेतृत्व था। उन्होंने न केवल सेना का अनुशासन बनाए रखा बल्कि स्वयं युद्धभूमि में उतरकर सैनिकों का नेतृत्व किया। गुलाम क़ादिर के विरुद्ध उनकी विजय ने उन्हें दिल्ली दरबार का अनिवार्य अंग बना दिया। यही नहीं, उन्होंने मराठों और अंग्रेज़ों के बीच चल रहे संघर्ष में अद्भुत संतुलन साधा।

महेंद्रनाथ शर्मा मानते हैं कि "यदि बेगम समरू पुरुष होतीं, तो उन्हें उत्तर भारत का एक प्रमुख शासक माना जाता। किंतु स्त्री होने के कारण इतिहासलेखन ने उन्हें लंबे समय तक केवल एक किंवदंती या रोमांचक पात्र मानकर उपेक्षित किया।"[27]

उनके प्रशासन में न्यायप्रियता और कठोर अनुशासन दोनों का संगम था। किसानों पर अत्यधिक कर नहीं लगाया गया और सैनिकों को समय पर वेतन व सुविधाएँ दी गईं। यह संतुलित नीति ही उनकी स्थिर सत्ता का आधार बनी।

कूटनीति और धर्म

कूटनीतिक दृष्टि से बेगम समरू का योगदान और भी महत्वपूर्ण है। उन्होंने कभी किसी एक शक्ति पर पूर्ण निर्भरता नहीं दिखाई। दिल्ली दरबार के प्रति निष्ठा बनाए रखते हुए उन्होंने मराठों और अंग्रेज़ों दोनों से संबंध रखे। यह उनकी राजनीतिक दूरदर्शिता थी कि उन्होंने परिस्थितियों के अनुसार गठबंधन बदले, किंतु अपनी जागीर की स्वायत्तता बरकरार रखी।

धर्म परिवर्तन का निर्णय भी इसी दूरदर्शिता का हिस्सा था। उन्होंने कैथोलिक ईसाई धर्म अपनाकर यूरोपीय अधिकारियों और मिशनरियों से गहरे संबंध बनाए, किंतु अपनी प्रजा पर धार्मिक दबाव नहीं डाला। उनकी रियासत में हिंदू, मुसलमान और ईसाई सभी समुदायों को

---

[26] राजगोपाल सिंह वर्मा, *बेगम समरू का सच* (मेरठ: संवाद प्रकाशन, 2019), 241.

[27] Mahendranath Sharma, *The Life and Times of Begum Samru of Sardhana* (Delhi: S. Chand, 1972), 167.

समान संरक्षण मिला। ब्रजेंद्रनाथ बनर्जी इसे “भारतीयता और यूरोपीयता के अनूठे संतुलन” के रूप में देखते हैं।[28]

सांस्कृतिक और सामाजिक योगदान

बेगम समरू ने कला और स्थापत्य को भी संरक्षण दिया। सरधना का प्रसिद्ध चर्च उनकी कलात्मक दृष्टि और धार्मिक उदारता का प्रतीक है। साथ ही उन्होंने मंदिरों और स्थानीय कला रूपों का भी संरक्षण किया।

राजगोपाल सिंह वर्मा लिखते हैं कि उनकी रियासत में स्त्रियों की स्थिति अपेक्षाकृत बेहतर थी। विधवाओं को संरक्षण और स्त्रियों पर अत्याचार करने वालों को कठोर दंड दिया जाता था। यह उस युग में असाधारण था जब स्त्रियाँ अक्सर उपेक्षा और हिंसा की शिकार होती थीं।[29]

आधुनिक इतिहासलेखन में मूल्यांकन

लंबे समय तक औपनिवेशिक इतिहासकारों ने बेगम समरू को या तो विदेशी साहसी के सहारे सत्ता प्राप्त करने वाली महिला के रूप में प्रस्तुत किया या फिर एक सनसनीखेज़ किंवदंती के रूप में। किंतु आधुनिक भारतीय इतिहासलेखन, विशेषकर राजगोपाल सिंह वर्मा की कृति, ने उनके वास्तविक योगदान को सामने रखा है। वर्मा जी का तर्क है कि “बेगम समरू को समझने का अर्थ है स्त्री नेतृत्व और सत्ता के बीच उस संवाद को समझना, जिसे औपनिवेशिक दृष्टि ने दबाने का प्रयास किया।”[30]

महेंद्रनाथ शर्मा और ब्रजेंद्रनाथ बनर्जी भी मानते हैं कि उनका योगदान केवल स्थानीय स्तर का नहीं था, बल्कि दिल्ली दरबार और उत्तर भारत की राजनीति में निर्णायक था।

समग्र निष्कर्ष

---

[28] Brajendranath Banerji, *Begum Samru* (Calcutta: University of Calcutta, 1925), 110.

[29] वर्मा, *बेगम समरू का सच*, 263.

[30] वही, **278.**

बेगम समरू का जीवन और व्यक्तित्व हमें तीन महत्वपूर्ण निष्कर्ष देता है:

पहला, सत्ता और सैन्य नेतृत्व किसी लिंग की सीमा में बंधे नहीं होते। यदि अवसर और इच्छाशक्ति हो तो स्त्रियाँ भी निर्णायक नेतृत्व दे सकती हैं।

दूसरा, कूटनीति और धार्मिक उदारता सत्ता की स्थिरता के लिए उतनी ही आवश्यक हैं जितनी सैन्य शक्ति। बेगम समरू ने यह प्रमाणित किया कि संवाद, सहिष्णुता और संतुलन सत्ता के स्थायित्व की कुंजी हैं।

तीसरा, सांस्कृतिक संरक्षण और सामाजिक न्याय शासक की वास्तविक लोकप्रियता का आधार होते हैं। बेगम समरू ने इन दोनों को महत्व देकर अपनी रियासत को स्थिर और सम्मानित बनाया।

इस प्रकार, बेगम समरू का व्यक्तित्व भारतीय इतिहास की उस परंपरा का हिस्सा है जहाँ महिलाएँ केवल उपेक्षित पात्र नहीं, बल्कि सत्ता और समाज की धुरी भी रही हैं। उनका जीवन स्त्री नेतृत्व की संभावनाओं का जीवंत प्रमाण है और यह आज भी प्रेरणा देता है कि असमान परिस्थितियों में भी दृढ़ संकल्प और व्यावहारिक दृष्टि से इतिहास की धारा बदली जा सकती है।

राजगोपाल सिंह वर्मा के निष्कष का सारांश

राजगोपाल सिंह वर्मा अपनी कृति *बेगम समरू का सच* में बेगम के व्यक्तित्व को "साहस, अनुशासन और व्यावहारिकता की त्रयी" के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वर्मा लिखते हैं, "बेगम समरू का सच यह है कि उन्होंने अपने अस्तित्व की लड़ाई को सत्ता और नेतृत्व में बदला"[31]। उनके अनुसार, यह केवल किसी यूरोपीय सेनापति की विधवा का अधिकार नहीं था, बल्कि उनकी स्वतंत्र नेतृत्व क्षमता थी जिसने सरधना को स्थिर और संगठित सत्ता में बदला।

वर्मा यह भी मानते हैं कि बेगम का चरित्र केवल युद्ध और कूटनीति तक सीमित नहीं था। वह लिखते हैं, "उनकी कठोरता में न्याय और उनकी धार्मिकता में सहिष्णुता का संतुलन

[31] राजगोपाल सिंह वर्मा, *बेगम समरू का सच* (मेरठ: संवाद प्रकाशन, 2019), 112.

था"[32]। इसका अर्थ है कि वे न तो सत्ता को निरंकुश बनाना चाहती थीं और न ही धर्म को विभाजन का आधार। यही कारण था कि उनकी प्रजा, चाहे हिंदू हो, मुसलमान हो या ईसाई, सभी उन्हें संरक्षक मानते थे।

धर्म परिवर्तन को वर्मा रणनीतिक दृष्टि से देखते हैं। उनके शब्दों में, "यह निर्णय आस्था और राजनीति का सम्मिश्रण था, जिसने यूरोपीय सहयोगियों को स्थायी रूप से निष्ठावान बनाए रखा"[33] । किंतु इसके बावजूद उन्होंने स्थानीय संस्कृति और धार्मिक परंपराओं को सम्मान दिया।

अंततः, वर्मा का निष्कर्ष है कि "बेगम समरू भारतीय स्त्री नेतृत्व की उस परंपरा का सच हैं, जो यह प्रमाणित करती है कि स्त्रीत्व और शौर्य विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हो सकते हैं"[34] । यही कारण है कि उनका चरित्र भारतीय इतिहास में केवल किंवदंती नहीं, बल्कि वास्तविक प्रेरणा का स्रोत है।

****

ग्रंथ सूची (Bibliography)

प्राथमिक स्रोत

वर्मा, राजगोपाल सिंह। *बेगम समरू का सच*। मेरठ: संवाद प्रकाशन, 2019।

द्वितीयक स्रोत

बैनर्जी, ब्रजेंद्रनाथ। *बेगम समरू*। कलकत्ता: कलकत्ता विश्वविद्यालय, 1925।

शर्मा, महेंद्रनाथ। *बेगम समरू ऑफ सरधना: जीवन और समय*। दिल्ली: एस. चाँद, 1972।

---

[32] वही, **163.**

[33] वही, **182.**

[34] वही, **225.**

चंद्र, सतीश। *मध्यकालीन भारत: सल्तनत से मुग़ल तक, 1526–1748*। दिल्ली: हर-आनंद, 1999।

गुप्ता, नारायणी। *दो साम्राज्यों के बीच दिल्ली, 1803–1931: समाज, सरकार और शहरी विकास*। दिल्ली: ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1998।

हसन, फरहत। *मुग़ल भारत में राज्य और स्थानीयता: पश्चिमी भारत में सत्ता संबंध, स. 1572–1730*। कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2004।

ख़ान, इक़्तिदार आलम। “औरंगज़ेब के अधीन अमीर वर्ग।” *इंडियन हिस्टॉरिकल रिव्यू* 5, सं. 2 (1978): 241–263।

सेन, शैलेन्द्रनाथ। *भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास (खंड 1, 1707–1856)*। कलकत्ता: न्यू एज पब्लिशर्स, 1997।

स्टोक्स, एरिक। *किसान और राज: औपनिवेशिक भारत में कृषक समाज और किसान विद्रोह का अध्ययन*। कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1978।

0% Overall Similarity

NO MATCHES FOUND

This submission did not match any of the content we compared it against.